चन्दामामा

माँ-बच्चों का मासिक पत्र



1ST JAN. '51

6



किसी गाँव में घनराज नामक एक बनिया रहता था। एक दिन वह हाट गया और आठ बजे रात को लौटा। घर पहुँचते ही बाहर चबूतरे पर बैठ कर वह जोर जोर से चिल्लाने और छाती पीटने उगा। उसी समय गाँव का पटवारी उधर से जा रहा था। उसनें यह सब देख कर पूछा-"क्या बात है? बयों इस तरह छाती पीट रहे हो ?"

यह सुन कर धनराज ने कहा-"क्या कहूँ पटवारी जी ! मैंने हफ्ते भर बिक्री करके सौ रुपए की रेजकी जमा की थी। हाट में ले जाकर उसे रुपए बना लिए और एक थैली में डाल दिए। रेजकी से जो पैसे मिले उनसे परवल, गोभी, आलू आदि साग-सब्जी खरीद कर दूसरी - थैलियों में डाली। इतने में मुझे अपने गाँव आने बाली बैल-गाड़ियाँ दिखाई दीं। गाड़ीवानों से बात कर मैं एक गाड़ी पर चढ़ गया। गाड़ी पर चढ़ते ही नींद के मारे ऊँघने लगा। घर पहुँच कर जब मैं नीचे उतरा और अपनी थैलियाँ उतारने कगा, तब देखने में आया कि तरकारियों की थैलियाँ तो वहाँ थीं। परन्तु रुपयों की थैली न जाने कहाँ गिर गई थी ! बया मालूम, किस साइत में गाड़ी पर चढ़ा था कि हफ्ते भर की पसीने की कमाई खो गई।" घनराज यह कह कर फिर जोर से रोने लगा।

यह सुनकर पटवारी ने उसे ढाढस देते हुए कहा-"तुम्हारी थैली सड़क पर कहीं गिर गई होगी। कल सवेरे आस-पड़ोस के सभी गाँवों में डिगडिगिया पिटवा दो कि "मेरी रूपयों की थैली कहीं खो गई है। जो कोई



उसे लाकर मुझे सौंप देगा उसे मैं दस रुपए इनाम दूँगा।" तुम्हारी नसीब अच्छी होगी तो थैली मिल जाएगी।"

"अरे, दस रुपए की चात क्या करते हैं आप ! जो थैली ला देगा उसे मैं पच्चीस रुपए दूँगा। नहीं मानेंगा तो पचास भी दे दूँगा। मैं ईनाम देने में हिचकूँगा नहीं।" धनराज ने जवाब दिया।

"पहले दस रुपए की बात कहो। पीछे लैसा होगा देखा जाएगा।" पटवारी ने कहा। दूसरे दिन सबेरे उठते ही घनराज ने आस-पड़ोस के सभी गाँवों में डिगडिगिया पियवा दी।

पड़ोस के ही एक गाँव में चबूतरे पर बैठ कर जनेऊ बाँटने वाले एक गरीब ब्राह्मण ने जब थैली की वात सुनी, तो वह उठ कर अन्दर गया और अपनी स्त्री से बोला- "कल मुझे जो थैली मिली थी, मालूम होता हैं वह एक बनिए की थी। अगर मैं उसे सौंप दूँ तो दस रुपए ईनाम मिलेंगे। कहाँ रखी है थैली ? मुझे दे दो ! जाकर ईनाम ले आता हूँ !" स्त्री ने जवाब दिया-"यह कैसी अक्लमन्दी है? जो थैली हमें मिल गई उसे फिर लौटाएँ क्यों ?"

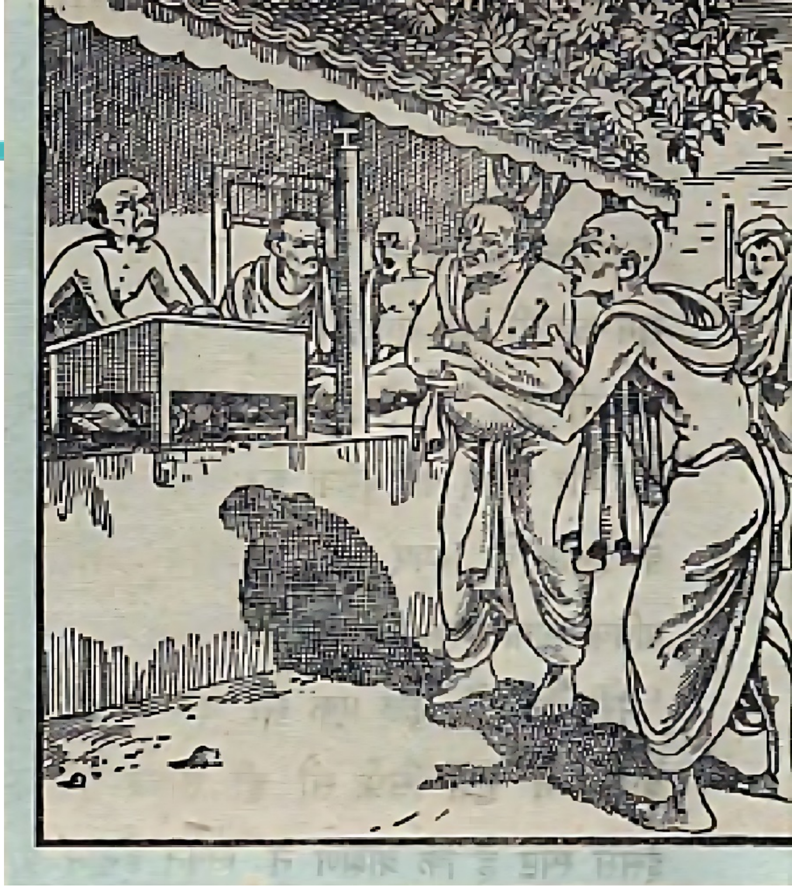
"अरे! हमें दस रुपए इनाम मिलेंगे। थैली हम मुफ्त में नहीं लौटा रहे हैं!" ब्राह्मण नें कहा।

"कैसी नादानी की बातें करते हैं आप ? चुप्पी साध लीजिए। बस, थैली अपनी हो जाएगी ! क्या दस रुपयों के लिए थैली भर रुपए दे दीजिएगा ?" स्त्री ने कहा।

लेकिन ब्राह्मण बड़ा ईमानदार था। उसने कहा-"पराया धन जान-बूझ कर हड़प जाना चोरी है। थैली दे दे! मैं थैली लौटा कर इनाम ले आता हूँ।" इस पर स्त्री ने थैली

लाकर गुस्से से उसके सामने पटक दी। ब्राह्मण वह थैली लेकर बनिए के घर गया। "लालाजी ! सड़क से जा रहा था कि यह थैली मेरे पैरों में लगी और मैं गिरते गिरते बचा। थैली उठा कर देखी तो मालूम हुआ कि उसमें रुपए हैं। आज सवेरे ढिँढोरा सुना तो मालूम हुआ कि थैली तुम्हारी है। तुम्हारा माल तुमको सौंपने चला आया। लो, थैली लो और मेरा ईनाम दो !" ब्राह्मण ने धनराज से कहा।

रुपयों की थैली देखते ही बनिए को बहुत खुशी हुई। उसने थैली खोल कर रुपए गिन लिए। सौ रुपए ज्यों के त्यों पड़े थे। अब सिर्फ़ ब्राह्मण को दस रुपए ईनाम देना था। लेकिन रुपए देखते ही बनिए की नीयत बिगड़ गई। उसने सोचा- "रुपए तो मिल ही गए। अब क्यों नाहक इस ब्राह्मण को दस रुपए दूँ ?" इसलिए उसने कहा-"पण्डित जी ! इस थैली में कुल एक सौ दस रुपए होने चाहिए। लेकिन गिनने पर सौ ही होते हैं। मालूम होता है, आपने



अपना ईनाम पहले ही ले लिया है !" यह सुनते ही ब्राह्मण बेचारे पर बिजली टूट पड़ी। उसके मुँह से बात तक न निकली और वह अपना सा मुँह लेकर घर लौट चला। लेकिन जाते वक्त राह में उसे पटवारी जी दिखाई दिए। उन्होंने ब्राह्मण का मुँह देखते ही पूछा-"बात क्या है ?"

तब ब्राह्मण ने सारा किस्सा उन्हें कह सुनाया । बनिए की धोखेबाजी की बात सुन कर पटवारी को बहुत क्रोध आया। उन्होंने ब्राह्मण से कहा "आप जाकर गाँव के पटेल से फरियाद कर दीजिए। वे आपके ईनाम के रुपए आपको दिला देंगे।"

तुरन्त ब्राह्मण ने जाकर पटेल से अपनी राम-कहानी कह सुनाई। पटेल बहुत होशियार आदमी था। उसने तुरन्त सच्ची बात जान ली और बनिए को बुलवा कर कहा - "ब्राह्मण के ईनाम के रुपए उसे दे दो।" लेकिन बनिया साफ इनकार कर गया। उसने कहा- "मेरी थैली में कुल एक सौ दस रुपए थे। ब्राह्मण ने मुझे सिर्फ़ सौ ही लाकर दिए। इससे स्पष्ट है कि ब्राह्मण ने अपने ईनाम के रुपए पहले ही ले लिए थे। अब मैं इसे एक पैसा भी नहीं दे सकता।" बनिए ने फिर वही पुराना किस्सा दुहरा दिया। तब पटेल ने पूछा- "अच्छा धनराज ! इस ब्राह्मण ने जो थैली तुम्हें लाकर दी उसमें सौ ही थे न ?"

"जी हाँ! मैंने उसके सामने ही गिने थे!" बनिए ने जवाब दिया।

तब पटेल ने यों फैसला दे दिया-"तुम दोनों ही अपनी अपनी बात पर क़सम खा रहे हो। इसलिए मुझे दोनों की बात पर विश्वास करना होगा। जो थैली खो गई थी उसमें कुल एक सौ दस रुपए थे। लेकिन जो थैली ब्राह्मण को मिली है उसमें सिर्फ़ सौ ही रुपए हैं। इससे साफ है कि जो थैली ब्राह्मण को मिली हैं वह तुम्हारी नहीं है। पण्डित जी ! आप यह थैली ले जाइए। अब कोई आकर सौ रुपए वाली थैली माँगेगा तो आप उसे यह दे दीजिएगा। धनराज ! अब तुम भी जाओ ! अगर किसी को तुम्हारी एक सौ दस रुपए की थैली मिलेगी तो वह लाकर तुम्हें दे देगा।" यह फैसला सुना कर पटेल ने दोनों को वहाँ से भेज दिया।





बूढ़ा आसमान में उड़ रहा था और उसकी बगल में अदृश्य रूप से धीरसिंह भी। देखने वाले को धीरसिंह के मुकुट के सिवा और कुछ नहीं दिखाई देता। उसी समय धीरसिंह के अलावा एक और मुकुट भी हवा में उड़ रहा था। वह उस बूढ़े की भाँजी का था। बूढ़ा जहाँ जहाँ जाता, वह भी अदृश्य रूप से उसका पीछा करती। जब से धीरसिंह की उस बूढ़े से मुलाकात हुई थी तब से वह उन दोनों के पीछे पीछे आ रही थी। लेकिन धीरसिंह यह बात न जानता था।

लेकिन एक बार बूढ़े की भाँजी उनके बहुत ही नजदीक आ गई। उसके मुकुट में पंख लगे थे। धीरसिंह ने उन पंखों के फड़फड़ाने की आवाज सुन ली। उसने बूढ़े से पूछा - "यह आवाज कैसी है ?"

तब बूढ़े ने जवाब दिया- "वह आवाज पंखों के फड़फड़ाने की है। मेरी एक भाँजी है । वह भी तुम्हारी ही तरह एक जादू का मुकुट पहन कर हमारा पीछा कर रही है। उसके मुकुट में पंख लगे हैं। देखो न सर उठा कर ! वह ठीक हमारे सिर पर उड़ती आ रही है।" बूढ़े ने ऊपर की ओर इशारा किया।

धीरसिंह ने सर उठा कर देखा । बूढ़े के कथनानुसार एक जादू का मुकुट पंख फड़फड़ाते हुए ठीक उनके सिर पर उड़ रहा था। इस तरह कुछ दूर तक जाने के बाद बूढ़े ने धीरसिंह को रोक कर कहा- "बच्चे ! अब हम राक्षस के नजदीक आ गए हैं। अब तुम्हें बड़ी सवाधानी से काम लेना है। कहीं तुम्हारी नजर उस राक्षस पर पड़ गई तो तुम तुरन्त पत्थर बन जाओगे और हमारा किया



कराया सब मिट्टी में मिल जाएगा। इसलिए सावधान रहो !" बूढ़े ने उसे चेताया।

"अच्छा! मैं उसकी ओर नहीं देखूँगा। लेकिन क्या तुम्हें आँखें नहीं मूँदनी पड़ेंगी?" धीरसिंह ने पूछा।

"हम उसके तो नजदीक नहीं जाएँगे। इसलिए हमारी आँखें मूँदने की जरूरत नहीं। सारा काम तो करना तुम्हें है। इसीलिए मैंने तुम्हें अपनी ढाल माँज कर साफ कर लाने को कहा था। तुम एक आईने की तरह राक्षस को देखने के लिए उसका इस्तेमाल करो !" बूढ़े ने कहा।

धीरसिंह ने सिर हिला दिया। उस समय वे एक समुन्दर के ऊपर उड़ रहे थे। बूढ़े को वहाँ से थोड़ी ही दूर पर समुन्दर के किनारे राक्षस के खर्राटे लेने की आवाज सुनाई दी। साथ साथ उसके सिर पर साँपों के फुफकारने की आवाज भी सुनाई देती थी।

"लो! देखो, वह समुन्दर के किनारे सो रहा है। अब तुम्हें उसे मारना है। तुम अपनी ढाल में उसकी परछाई देख सकते हो। लेकिन वह मुकुट के प्रभाव से तुम्हें नहीं देख सकता। तुम बड़ी सावधानी से ढाल में उसे देखते हुए धीरे धीरे उसके पास जाओ। मैंने जो तलवार तुम्हारी कमर में बाँध दी है उसे निकाल कर एक ही वार में उसके तीनों सिर काट डालो। फिर उन्हें इस जादू की थैली में डाल कर, बाँध लो और जल्दी से ले आओ !" यह कह कर बूढ़े ने जादू की थैली धीरसिंह को दे दी।

"अरे! यह क्या ? इसी थैली ने तो हमें खाने-पीने की चीजें दीं थीं। इसमें वे खून से सने सिर रख कर इसे क्यों खराब कर दें? तिस पर वे तीनों सिर इसमें कैसे समाएँगे ?" धीरसिंह ने पूछा।

"देखो ! अब बहस करने का समय नहीं रहा। देर करोगे तो सारा मामला बिगड़ जाएगा। वह एक बार जग गया तो फिर एक साल तक सोने का नाम न लेगा। जाओ, जल्दी जाओ!" बूढ़े ने जल्दी की।

धीरसिंह सीधे समुन्दर के किनारे गया। वह राक्षस के सिर पर मँडराते हुए मौके की ताक रहा। नीचे राक्षस गाढ़ी नींद में था। लेकिन उसके सिर पर के साँप भयङ्कर फुफकार मार रहे थे। धीरसिंह यह सब अपनी ढाल के जरिए देख रहा था।

थोड़ी दूर पर आसमान में उड़ता हुआ बूढ़ा भी धीरसिंह की हरेक चाल ताक रहा था। उसे देर करते देख कर बूढ़े ने चिल्ला कर कहा- "देखते क्या हो ? टूट पड़ो न उस पर?"

उसकी चिल्लाहट सुन कर धीरसिंह ने तलवार निकाल कर पलक झपकते ऐसा वार किया कि राक्षस के तीनों सिर धड़ से एक दम जुदा हो गए। तब उसने थैली निकाली और राक्षस के तीनों सिर उसमें रखे। थैली थी तो बहुत ही छोटी। लेकिन राक्षस के सिर ज्यों ही उसमें पड़े वह बड़ी हो गई।





यह देख कर धीरसिंह के अचरज का ठिकाना न रहा। आखिर उसने तीनों सिर उसमें रख कर हिफाजत के साथ थैली का मुँह बाँध दिया। लेकिन अन्दर से अब भी साँपों के फुफकारने की आवाज सुनाई दे रही थी। धीरसिंह जब वह थैली लेकर बूढ़े के पास पहुँचा तो उसने कहा- "राक्षस के सिर कटने के बाद भी छः महीने तक जिन्दा रहते हैं। इसलिए छः महीने तक किसी भी हालत में यह थैली नहीं खोलनी चाहिए।

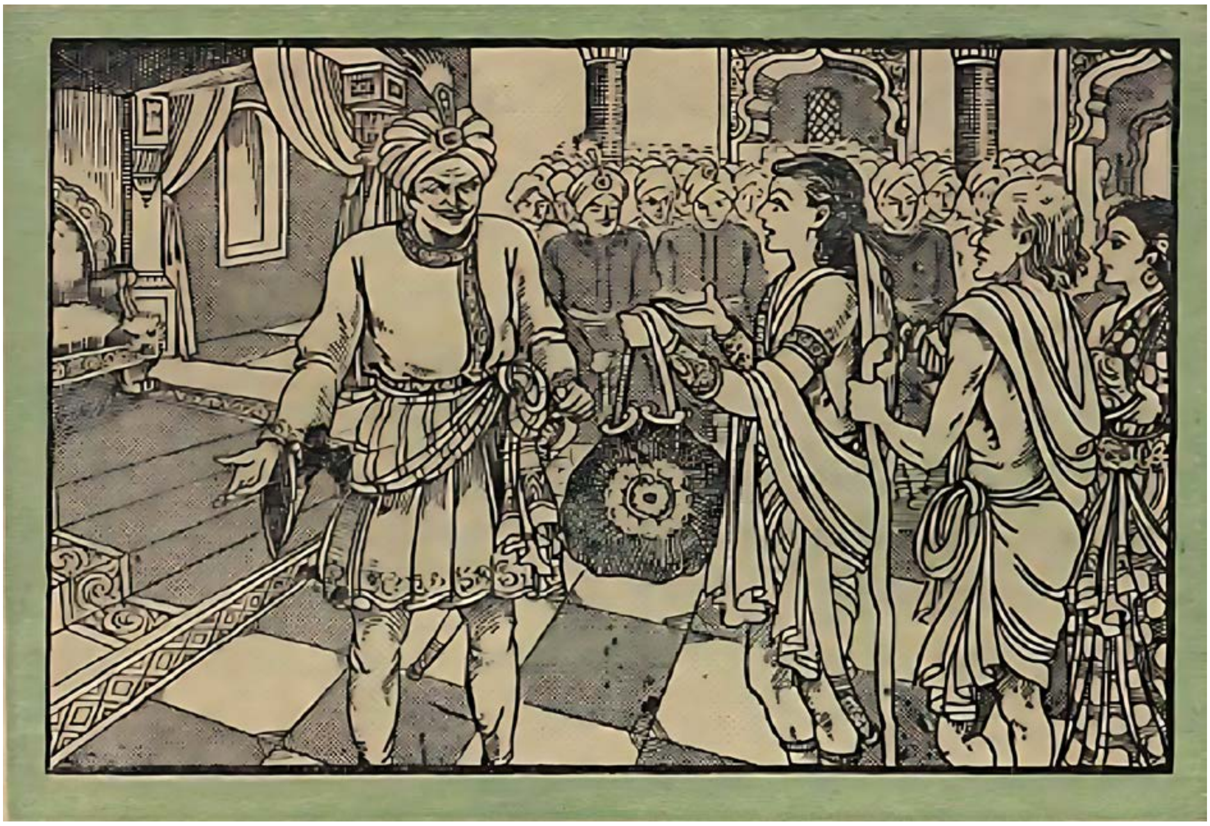
इसके बाद धीरसिंह, बूढ़ा और उसकी भाँजी दो तीन दिन में अपने देश पहुँच गए।

जब दुष्टपाल ने सुना कि उसका भाँजा जिन्दा ही लौट आया है तो उसे अपने कानों पर विश्वास न हुआ। तो भी उसने बनावटी खुशी दिखाते हुए उसकी अगवानी की और बूढ़े की ओर देख कर पूछा -"ये कौन हैं ?"

"मैं इन्हीं की मदद से यह काम पूरा करके जिन्दा लौट सका। अगर ये न होते तो मेरी जान कभी न बचती। मैंने राक्षस को मार कर उसके सिर इन्हीं की सलाह से इस थैली में बन्द कर दिए हैं। लेकिन आप उनको नहीं देख सकते।" धीरसिंह ने जवाब दिया।

"क्यों? मैं उन्हें क्यों नहीं देख सकता? इसमें कौन सा रहस्य छिपा है ?" दुष्टपाल ने तुरन्त पूछा।

"थैली खोलने में बड़ा भारी ख़तरा है। बात यह है कि मरने के बाद भी छः महीने तक इन सिरों में जान रहती है। इस बीच में जो उनको देखता है वह तुरन्त पत्थर बन जाता है। इसलिए उन्हें देखने के लिए आपको छः महीने तक ठहरना पड़ेगा।" धीरसिंह ने जवाब दिया।



"अगर तुम्हारी बात सच है तो तुम उसे देखे बिना कैसे मार कैसे मार सके ? हमें तो ऐसा मालूम होता है कि तुम झूठ-मूठ की डींग हाँक रहे हो। उन सिरों को देखे बिना मैं यह कभी विश्वास नहीं कर सकता कि तुमने सचमुच राक्षस को मार डाला है। मैं वह थैली जरूर खोल कर देखूँगा।" राजा दुष्टपाल ने कहा।

मन्त्रियों ने भी हाँ में हाँ मिलाई- "हाँ, वह थैली जरूर खोल कर देखनी चाहिए। हमें भी इसकी बातों पर बिलकुल विश्वास नहीं होता।"

तब बूढ़े और उसकी भाँजी ने भी राजा को बहुत समझाया। उन्होंने कहा -"आप क्यों बेकार हठ करते हैं? उन सिरों पर नज़र पड़ते ही आप सभी तुरन्त पत्थर बन जाएँगे।"

लेकिन राजा ने उनकी भी न सुनी। मन्त्रियों ने भी न माना।

"जैसी आपकी मर्जी ! हमें जो कुछ कहना था कह चुके। अगर आप न मानें तो उसकी

जिम्मेवारी हम पर नहीं।" यह कह कर बूढ़े ने फिर धीरसिंह और अपनी भाँजी के सिर पर जादू के मुकुट रख दिए। तुरन्त वे अदृश्य हो गए। उनकी जगह सिर्फ दो मुकुट दिखाई देने लगे। यह देख कर दरबारी सभी चकित हो गए ।

तब बूढ़े ने फिर कहा "मैं फिर आखिरी बार चेता रहा हूँ कि आप अपना हठ छोड़ दीजिए। नहीं तो पल भर में आपकी जगह पत्थर की मूरतें खड़ी हो जाएँगी।"

लेकिन राजा और उसके दरबारियों को उसकी बात पर यकीन न हुआ। उन सबने एक स्वर से कहा- "जो भी हो, हम उन सिरों को जरूर देखेंगे।"

तब बूढ़े ने जान लिया कि उन्हें समझाने-बुझाने से कोई फायदा नहीं। उसने थैली जमीन पर रख दी और धीरसिंह से कहा-"मैं बाहर जाता हूँ। तुम मेरी पहले की बातों पर ध्यान रख कर थैली खोल दो। उनको दिखा कर फिर तुरन्त उसका मुँह बाँध देना ! तब मुझे पुकारना ! मैं अन्दर आ जाऊँगा।

यह कह कर बूढ़ा अपनी भाँजी के साथ बाहर चला गया। वहाँ वे दोनों पीठ फेर कर खड़े हो गए। "मामू ! विदा !" यह कह कर धीरसिंह ने अपनी ढाल में परछाईं देखते हुए थैली का मुँह खोला । तुरन्त राक्षस के तीनों सिर जमीन पर लुढ़क पड़े। उन्हें देखते ही राजा, मन्त्री और दरबारी सभी जहाँ के तहाँ पत्थर बन गए। तब धीरसिंह ने अपनी माँ के पास जाकर सारा किस्सा कह सुनाया। वह बहुत ही खुश हुई। कुछ दिन बाद धीरसिंह ने बूढ़े की भाँजी से ब्याह कर लिया और गद्दी पर बैठा। उसके राज में सब लोग सानन्द रहने लगे। [समाप्त]



किसी गाँव में एक पण्डितजी अपनी पत्नी के साथ रहा करते थे। एक बार उन्होंने तीर्थ करने की इच्छा से बड़ी मेहनत करके तीन सौ रुपए कमाए। उसमें से दो सौ रुपए राह- खर्च के लिए ले लिए और बाकी सौ रुपए एक लुटिया में डाल कर उसका मुँह बन्द करके उन्होंने लाला तोन्दूराम को रखने के लिए दिए। फिर वे तीर्थ करने चले गए।

लेकिन उनके जाने के बाद लाला की नीयत बिगड़ गई। उसने ब्राह्मण का पैसा हड़प जाने की सोची। इसलिए उसने लुटिए में से रुपए निकाल लिए और कक्कड़-पत्थर बाँध दिए। उसको यह नीच काम करते देख उसकी स्त्री ने उसे बहुत समझाया कि "ऐसा काम नहीं करना चाहिए। इससे हमारी भलाई न होगी।" लेकिन लाला ने उसकी बातों पर कोई ध्यान न दिया।

थोड़े दिनों में पण्डितजी तीर्थ करके लौट आए । आते ही उन्होंने लाला से अपनी लुटिया वापस ले ली। लेकिन जब उसका मुँह खोल कर देखा तो उन्हें रुपयों के बदले कक्कड़-पत्थर दिखाई दिए। रोते-धोते उन्होंने जाकर गाँव के मुखिए से फरियाद की। मुखिए ने लाला को बुला भेजा। लेकिन दोनों की बातें सुनने के बाद उसे न सूझा कि कैसे फैसला किया जाए। बनिया भी कसम खाकर कह रहा था कि उसने लुटिया ज्यों की त्यों लौटा दी है।

तब मुखिए की छोटी लड़की ने कहा- "पिताजी! आप सोच न कीजिए। मैं इस झगड़े का फैसला करूँगी।" यह कह कर उसने पिता के कान में एक उपाय बता दिया। मुखिए ने पण्डित और लाला दोनों को पत्नियों सहित दूसरे दिन

प्रमिला देवी

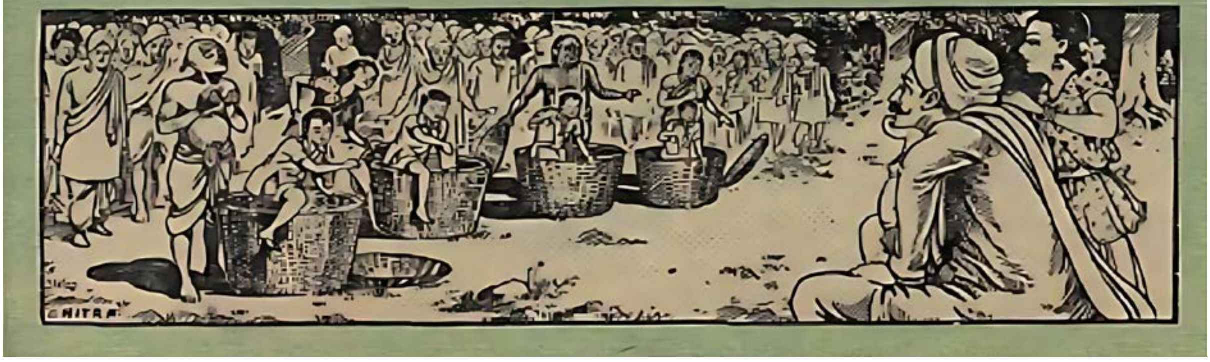
आने के लिए कह दिया। दूसरे दिन पण्डित और लाला अपनी स्त्रियों के साथ मुखिए के घर आए।

तब मुखिए ने चार बड़ी बड़ी ढकने लगी हुई टोकरियों की ओर इशारा करके कहा-"तुम चारों एक एक टोकरी ढोकर गाँव के बाहर बरगद के पेड़ के पास लेते चलो। मैं थोड़ी देर में आकर तुम्हारे झगड़े का फैसला करता हूँ।" यह कह कर उसने दोनों जोडियों को अलग अलग रास्ते से रवाना कर दिया। इस प्रकार टोकरियाँ ढोकर ले जाते हुए वे चारों अपने मन की बातें बताने लगे। लाला की स्त्री ने पति से कहा-"बेचारे गरीब ब्राह्मण को धोखा देकर तुमने अच्छा नहीं किया। इस पाप का फल हमें कभी न कभी भोगना पड़ेगा।" "अरी ! बेवकूफ ! थोड़ी देर तो चुप्पी साध ले ! फिर सौ रुपए हमारे हो जाएँगे।" लाला ने जवाब दिया।

उधर ब्राह्मण की स्त्री कह रही थी- "रुपया तो गया ही! साथ ही हमें बेगार भी ढोना पड़ रहा है !"

"न जाने, यह किस पाप का फल है ?" ब्राह्मण ने जवाब दिया। थोड़ी देर में वे चारों बरगद के पेड़ के पास आ पहुँचे और अपने अपने सिर से टोकरियाँ उतार दीं। इतने में मुखिए ने आकर उन चारों टोकरियों के ढकने खोले । तुरन्त उनमें से मुखिए के चारों बच्चे बाहर निकल आए। उन्होंने टोकरियों में बैठे बैठे जो बातें सुनीं थीं वे सब दुहराई।

तुरन्त मुखिए को सच्ची कहानी मालूम हो गई। उसने पण्डितजी को उसका रुपया वापस दिला दिया और लाला को धोखेबाजी की कड़ी सजा दी। मुखिए की लड़की ने उसके कान में यही युक्ति बताई थी।





किसी समय तञ्जौर पर रघुनाथ नामका राजा राज किया करता था। उसे सङ्गीत से बहुत प्रेम था। इसलिए वह दूर दूर के गवैयों को बुलाता और उनका बहुत सत्कार करके अपने दरबार में रह जाने को कहता। वह उन्हें अच्छी-अच्छी जागीरें देता और हीरे-जवाहरात से लाद देता। इसलिए देश के नामी गवैए सभी आकर उसके दरबार में रहने लगे।

उसके दरबार में जितने गानेवाले थे उन सब में कामाक्षी का नाम बहुत मशहूर था। उसके गले में एक तरह की लोच थी जो और किसी के गले में न थी। वह जब गाने लगती तो रोने वाले बच्चे चुप हो जाते। गौएँ चरना छोड़ कर वैसे ही खड़ी रह जातीं। साँप बाँबियों में से बाहर निकल कर फन फैला कर नाचने लगते। मतलब यह कि कामाक्षी के गाने पर पशु-पक्षी भी मुग्ध हो जाते। राजा को उस पर बड़ा गर्व था। उसने उसे "मधुर वाणी" "कोकिल-बैनी" आदि कई उपाधियाँ दे रखीं थीं। फिर जागीरों वगैरह का तो कहना ही क्या ?

कामाक्षी गाती तो बहुत अच्छा थी; लेकिन देखने में खूबसूरत न थी। खूबसूरत न थी क्या -यों कहना चाहिए कि बदसूरत थी। लेकिन लोग उसका गाना सुनते ही सारी दुनियाँ भूल जाते थे। उन्हें क्या खबर कि वह देखने में कैसी है ?

एक बार ऐसा हुआ कि राजा रघुनाथ के मित्र, हैदराबाद के नवाब निजाम उन्हें देखने के लिए पधारे। बस, राजा रघुनाथ की खुशी का ठिकाना न था। सारे नगर को सजाया गया। नवाब के स्वागत का इन्तज़ाम



किया गया। राजा उन्हें खुद जाकर नगर में ले आया।

दूसरे दिन नवाब के मन-बहलाव के लिए दरबार में कामाक्षी का गाना हुआ। उस दिन कामाक्षी ने बहुत अच्छा गाया। यहाँ तक कि "वाह ! वाह !" कहते हुए नवाब खुद उठा और अपने गले की मोतियों की माला उसके गले में डाल दी। लेकिन नवाब जरा

लँगड़ा था। उसको लँगड़ाते हुए कामाक्षी के पास जाते देख कर दरबारियों के मन में बड़ा दुख हुआ। उन्होंने सोचा- "हाय ! नवाब वो लँगड़ा है !"

नवाब ने कामाक्षी के नजदीक जाकर देखा तो मालूम हुआ कि वह बड़ी बदसूरत है। तब उसे मजाक सूझा। उसने कहा- "कामाक्षी ! तुम्हारी देवी सरस्वती अन्धी जान पड़ती हैं।"

यह सुन कर कामाक्षी को बड़ा अचरज हुआ। उसने कहा -"क्यों हुजूर ? आप ऐसा क्यों कहते हैं ?"

तब नवाब ने जवाब दिया-"नहीं तो और क्या ? क्या आँख रहते कोई तुम्हारे पास जान-बूझ कर फटकेगा? फिर भी देखो ! सरस्वती ने तुम्हें गाने की कला देकर तुम्हारा आश्रय लिया। इससे मालूम होता है कि वे जरूर अन्धी हैं ।"

कामाक्षी समझ गई कि नवाब उसकी बदसूरती का मजाक उड़ा रहे हैं। उनके कहने का मतलब था कि विद्या देने वाली सरस्वती देवी अन्धी हैं। इसी कारण तुम्हारी बदसूरती की बात नहीं जान सकीं। नहीं तो तुम्हारा आश्रय लेकर तुम्हें इतना अच्छा गाने की शक्ति नहीं देतीं। उनकी बात में कामाक्षी

के गाने की प्रशंसा भी थी और उसकी बदसूरती की निन्दा भी थी।

हर आदमी को अपनी बड़ाई सुन कर खुशी होती है। लेकिन कोई अपनी निन्दा सुनना पसन्द नहीं करता । कामाक्षी का इस तरह अपमान होते देख कर दरबारियों को बड़ा गुस्सा आया। लेकिन वे कर क्या सकते थे ? कोई दूसरा होता तो न जाने क्या हो जाता ! लेकिन यह तो नवाब की बात थी।

एक तो वह बड़ा धनी और शक्तिशाली था; दूसरे राजा रघुनाथ का बड़ा मित्र भी था । इसलिए वे सब लहू का घूँट पीकर रह गए।

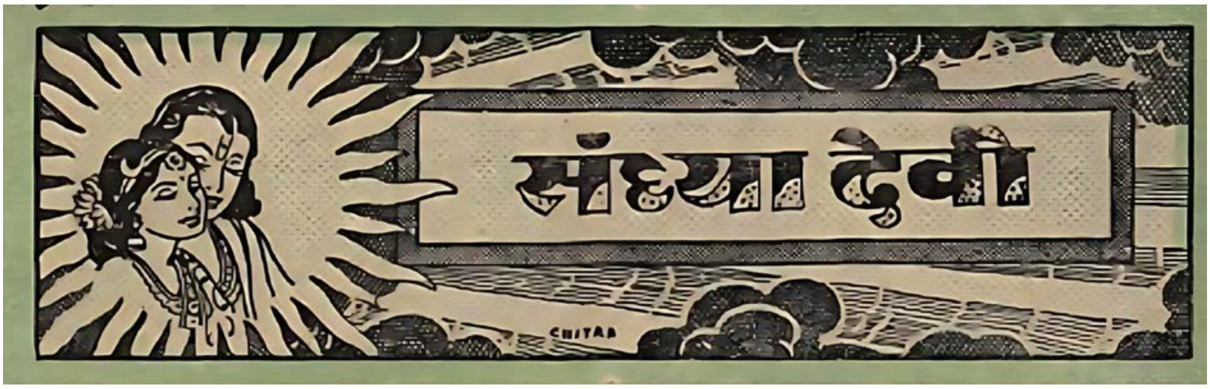
लेकिन कामाक्षी क्यों चुप रहने लगी? उसने ऐसा जवाब दिया कि नवाब साहब को सारी जिन्दगी याद रहे। कामाक्षी के पास सुन्दरता नहीं थी। लेकिन उसमें चतुरता की क्या कमी थी ? उसने छूटते ही कहा- "हुजूर ! एक देवी सरस्वती ही नहीं, लक्ष्मी देवी भी अन्धी हैं।"



"क्या कहा ! क्या लक्ष्मी देवी भी अन्धी हैं? इसका मतलब ?" नवाब ने पूछा। यह उसकी समझ में न आया।

"हाँ, हुजूर! लक्ष्मी देवी भी अन्धी हैं। नहीं तो वे आप जैसे लँगड़े के पास आकर इतनी धन-दौलत क्यों देतीं ? वे जरूर अन्धी हैं । इसीलिए हुजूर के लँगड़े पैर की ओर उनका ध्यान नहीं गया।" कामाक्षी ने निडर होकर कह दिया ।

यह जवाब सुन कर नवाब को बहुत गुस्सा आया। लेकिन करता क्या ? गलती उसी की थी; इसलिए चुप्पी साध गया।



सत्ययुग की बात है। विश्वकर्मा देवताओं के कारीगर थे। वे विमान तथा अस्त्र-शस्त्र वगैरह बनाया करते थे। विश्वकर्मा की सन्ध्यादेवी नामक एक सुन्दरी बेटी थी। वह बहुत ही सकुमारी थी। सन्ध्या जब सयानी हुई, तो भगवान सूर्य ने उससे ब्याह करने का निश्चय किया। यह देख बाकी सभी देवता निराश हो गए। सूरज के मुकाबले में कौन खड़ा होता?

सूरज रोज सारी दुनियाँ का चक्कर लगा आता था। इसलिए उसे मालूम था कि कहाँ-कहाँ कुँआरी सुन्दरियाँ हैं। सन्ध्या देवी को देख कर उसे विश्वास हो गया कि वही सब से सुन्दरी है। इसलिए उसने उससे ब्याह करने का निश्चय किया। सूरज की महिमा विश्वकर्मा को भी मालूम थी । इसलिए एक शुभ साइत में उसने अपनी बिटिया सूरज को ब्याह दी।

पहले तो सन्ध्या देवी को बहुत खुशी हुई कि उसे ऐसा अच्छा वर मिला। लेकिन ससुराल जाते ही उसकी सारी ख़ुशी हवा हो गई। सूरज सारे संसार को जीवन देता हो तो दिया करे। लेकिन उस तरह ददकने और जलने वाले पति के साथ कोई स्त्री कैसे गिरस्ती चलाए ? तिस पर सन्ध्या बहुत ही खुकुमारी थी। वह बार बार मन में सोचती कि अपनी मुसीवत पति को बता दे और कहे कि "नाथ, आप हमेशा जलते रहते हैं; इसलिए आपके पास आने में मुझे बहुत मुश्किल होती है।" लेकिन उसकी हिम्मत न पडती थी।

कुछ दिन बाद सन्ध्या के यमुना नाम की एक लड़की और यम और वैवस्वत नाम के दो लड़के पैदा हुए। दिन बीतते गए। पर सूरज की गरमी घटने के बदले बढ़ती ही गई। कुछ दिन में ऐसी हालत हो गई कि

काशीनाथ



सन्ध्या देवी उसे बिलकुल बर्दाश्त नहीं कर सकती थी। वह अपनी मुसीबत किसी से कह भी नहीं सकती थी । इसलिए एक दिन एकान्त में बैठ कर जार-बेजार रोने लगी।

अचानक उसे बगल में अपनी छाँह दीख पड़ी। उसे देखते दी सन्ध्या के मन मैं एक उपाय सूझ गया। अगर इस छाँह में जान फूँक दी जाए तो वह ठीक उसी की सी हो जाएगी । कोई पहचान न पाएगा। वह उसे अपनी जगह सूरज की स्त्री बना देगी और ख़ुद गरमी से तपे हुए अपने शरीर को आराम देगी। थह सोच कर सन्ध्या ने तुरन्त अपनी छाँह में जान फूँक दी और उसका नाम छाया रख दिया। वह देखने में ठीक उसी की जैसी थी। छाया नाम भी उचित था। क्योंकि "छाया" के माने छाँह होता है।

"बहिन! तुमने मुझे क्यों पैदा किया?" छाया ने पूछा। तब सन्ध्या ने अपनी सारी कठिनाइयाँ उसे सुना कर कहा-"वहन ! तुम्हें इस तरह रहना होगा जिससे मेरे पति को बिलकुल शक न हो। मैं अपने बच्चों को भी यहीं छोड़ कर जा रही हूँ। तुम्हें उनकी अच्छी देख-भाल करनी होगी जिससे वे सचमुच तुम्हें अपनी माँ ही समझ लें। देखना ! हमारा भेद किसी को मालूम न हो !" फिर सन्ध्या ने छाया से कसम खिलवाई और दूसरे ही दिन उससे बिदा लेकर मायके चली गई।

सन्ध्या को अकेली लौटती देख कर विश्वकर्मा ने सोचा-"वात क्या है?" वह भी लाज के मारे पिता से कुछ कह न सकी। इसलिए उसके माता-पिता ने सोचा-"यह जरूर किसी कारण अपने पति से रूठ कर चली आई है। अच्छा ! कुछ दिन बाद जरूर उसका पति उसे मनाने आएगा। अगर ऐसा नहीं हुआ तो हम ही उसे ससुराल



पहुँचा आएँगे।" लेकिन उन्होंने जो सोचा वह नहीं हुआ। बहुत दिन बीत जाने पर भी सूरज सन्ध्या को लिवाने न आया। आए मी क्यों ? उसे क्या मालूम था कि सच्ची सन्ध्या देवी मायके में है? तिस पर छाया का बर्ताव भी ऐसा था कि किसी को कोई शक न हुआ। यहाँ तक कि बच्चों ने भी उसे अपनी माँ ही समझ लिया। छाया भी उन्हें ऐसे लाड-प्यार से पाल रही थी जैसे वह स्वयं उनकी माँ हो। फिर उन्हें शक केसे होता ?

जब बहुत दिन बीत जाने पर भी दामाद उनकी बेटी कों मनाने नहीं जाया तो विश्वकर्मा ने सोचा-"अब उपेक्षा करना ठीक नहीं ।" उसने सन्ध्या को बुला कर कहा-"बेटी ! पेड़ को अपने फलों का बोझ धोने में कोई दिकत नहीं होती। इसी तरह माता-पिता को अपनी सन्तान बोझा नहीं जान पडती। तुम हमारे घर जितने दिन चाहो रहो; लेकिन सपुराल छोड़ देना भी उचित नहीं।"

तब सन्ध्या ने जवाब दिया-"पिताजी ! आपका कहना ठीक हैं। इसलिए मैं आज ही चली जाती हूँ।" यह कह कर चह उसी दिन मायके से चल पड़ी। लेकिन रास्ते में जैसे ही सूरज के प्रचण्ड तेज की याद हो आई, उसका कलेजा काँप उठा। इसलिए वह सूर्य-लोक न गई और एक जङ्गल में जाकर रहने लगी। फिर उसने सोचा कि उसकी जैसी सुदरी को अकेली जङ्गल में रहना उचित नहीं। इसलिए उसने एक घोड़ी का रूप घारण कर लिया। उधर विश्वकर्मा ने सोचा कि उसकी बेटी सुकुशल ससुराल पहुँच गई है।

इघर सूरज छाया को ही सन्ध्या समझ उस पर अपना सारा प्रेम बरसा रहा था।

सन्ध्यादेवी के बच्चे भी उसे ही अपनी माँ मानते लगे थे। लेकिन कुछ दिन बाद छाया देवी के भी सौपर्ण और शनि नामक दो लड़के और तपती नामक एक छड़की पैदा हुई। अपने बच्चे पैदा होते ही छाया देवी का स्वभाव बदल गया। अब वह सन्ध्या देवी के बच्चों पर प्रेम खो बेठी ।और उनसे सौतिया डाह करने लगी। बेचारे लड़कों को क्या मालूम था कि चह चास्तव में उनकी माँ नहीं है।

उन्हे उस पर बहुत गुस्सा हो आया। एक दिन यम उसे पीटने पर तैयार हो गया। तुरन्त छाया ने जाकर और भी नोन-मिर्च मिला कर सूरज से शिकायत कर दी। लेकिन सूरज बेवकूफ न था । उसने सोचा-"यम की उम्र अभी बहुत थोड़ी है। लेकिन है चह बहुत समझदार ! फिर उसने ऐसा क्यों किया?" यह सोच कर उसने तुरन्त यम को बुलाया और फटकारा। तब यम ने कहा-"शायद आप नहीं जानते कि जब से तपती पैदा हुई तब से माँ हमसे सौतेली माँ का सा बर्ताव कर रही है!" यह सुन कर सूरज को बड़ा अचरज हुआ।



उसने इस बात की सचाई जानने के लिए छाया की चाल-ढाल पर नजर रखना शुरू किया। तब उसे मालूम हुआ कि यम का कहना सच है। उसका अचरज और भी बढ़ गया। यह क्या? माँ अपनी सन्तान में ही क्यों पक्षपात कर रही है ? वह अपनी ही सन्तान से सौत का सा व्यवहार वयों कर रही है ?

आखिर उसने एक दिन छाया को बुला कर उसे खरी-खोटी सुना दी। छाया देवी ने कुछ बहाना बनाया। लेकिन सूरज ने उसकी एक न सुनी ! वह अब सच्ची बात जानना चाहता था। उसके क्रोध से डर कर छाया देवी ने अन्त में उसे

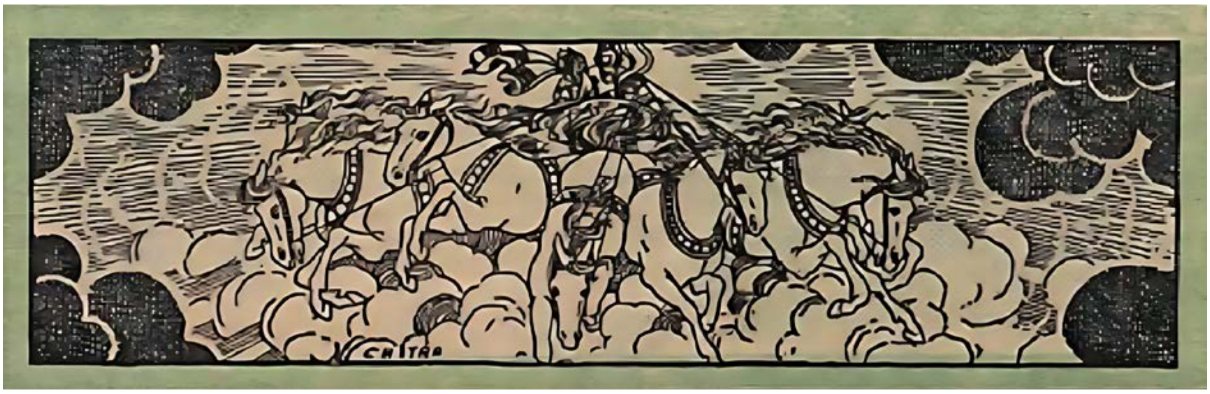
बता दिया कि वह सन्ध्या नहीं है। सन्ध्या तो कभी की मायके चली गई है। यह सुन कर सूरज को बहुत दुख हुआ। न जाने, उसके ससुर अपने मन में कया सोचते होंगे ?

सूरज ने तुरन्त विश्वकर्मा के घर जाकर पूछा-"सन्ध्या देवी कहाँ है?" यह सुन कर विश्वकर्मा का मुँह सफेद हो गया। उसने पूछा-"तो क्या वह आपके घर नहीं आई ?"

तब सूरज ने सारा किस्सा उन्हें कह सुनाया। तब विश्वकर्मा ने उसे धीरज दिया और अपने औजार लाकर सूरज की मरम्मत करना शुरू किया। उसने उसके दहकते हुए अङ्ग काट छाँट डाले। जब सूरज का तेज तो बच रहा; लेकिन पहले की सी गरमी न रही। इस तरह अपना ताप कम करके सूरज सन्ध्या को खोजने चला।

थोड़ी दूर जाने पर मालूम हुआ कि वह एक जङ्गल में घोड़ी के रूप में रहती है। इसलिए वह भी घोड़े का रूप बना कर उसी जङ्गल में चला गया। सूरज को देखते ही सन्ध्या देवी ने कहा-"नाथ ! फिर आप असली रूप न धारण कीजिए। मैं आपका प्रखर तेज नहीं सह सकती।" सूरज ने उसकी बात मान ली। वे दोनों घोड़ों के रूप में ही कुछ दिन उस जङ्गल में रहे। तब उनके अश्वनी-कुमार नामक दो पुत्र पैदा हुए।

ये ही आगे चल कर देवताओं के वैद्य बने। लेकिन सूरज तो हमेशा घोड़े के रूप में नहीं रह सकते थे? अगर वे ऐसे ही रह जाते तो फिर संसार की क्या दशा होती ! इसलिए उसने सन्ध्या को समझाया कि अब उसमें परिवर्तन आा गया है और पहले की सी गरमी नहीं है। इस तर सन्ध्या को मना कर वह उसे फिर अपने लोक को लौटा ले गया।





बहुत दिन पहले मुत्युक-राज पर शब्द-पालक नामक एक राक्षस राज करता था। उसकी सौ रानियाँ थीं। सौओं रानियों की सौ वेटियाँ थीं। उसके वाद गद्दी पर बैठने वाला एक भी बेटा पैदा न हुआ। तब राजा ने अपने राज में एक कानून बनाया । उसके मुत्ताबिक उस राज में रोते हुए पैदा होने वाले बच्चे, और हँसती हुई पैदा होने वाली बच्चियों को जीने का हक न था। उन्हें पैदा होने के पन्द्रह दिन के अन्दर काली के आगे बलिदान करना पड़ता था। भगवान की मरजी है कि हरेक शिशु चाहे बच्चा हो या बच्ची, रोते हुए ही पैदा होता है। इस नियम को कौन बदल सकता है? लेकिन राजा का कानून भी टाला नहीं जा सकता था। इसलिए लोग छाती पर पत्थर धर कर सभी बच्चों को काली के आगे बलि करते आए।

राक्षस-राज के इस कानून का यह फल हुआ कि कुछ दिन में उस राज में हर जगह लडकियाँ ही दिखाई देने लगी। लड़के सभी काली की बलि हो गए थे। अब उस राज में जहाँ देखो, वहीं औरतें थीं। औरतें ही सभी नौकरियाँ करती थीं। यहाँ तक की फौज मैं भी सभी औरतें थीं। इस तरह देश पर सङ्कट आते देख कर कुछ लोगों ने भगवान के लिए तप करना शुरू किया। कुछ दिन में उनके तप से तीनों लोक डोल गए। तब ब्रम्हा अपने लोक से दौड़ते हुए कैलास गए और प्रलय के देवता शिवजी से बोले- "शिवजी ! यह कैसी बात है? रोज़ मैं बड़ी मेहनत करके हजारों बच्चे पैदा करता हूँ। लेकिन आप पन्द्रह दिन के अन्दर उन सबको काल के गाल में भेज देते हैं? देखिए; इस बार मैं राक्षस-राज की सबसे छोटी रानी को

हरि प्रसाद



एक बच्चा देता हूँ। अगर आपने उस पर हाथ लगाया तो मैं इस नौकरी से इस्तीफा दे दूगा।" ब्रम्हाजी को क्रोध आ गया था।

तब शिवजी ने कहा-"ब्रम्हाजी! जन्म देना आपका काम है। नीवन देना विष्णु का काम हैं। फिर नाहक मुझ पर गुस्सा करने से क्या फायदा ? चलिए न? जाकर विष्णु से बात करें? यह कह कर शिवजी ब्रम्हा को लेकर विष्णु के पास गए। तब विष्णु ने ब्रम्हा की शिकायत सुन कर मुसकुराते हुए कहा-"इस सारे अनर्थ की जड़ में मेरा शाप है। मेरा शाप क्या था, क्यों उसका मैंने प्रयोग किया, सुनाता हूँ; सुनिए ! मुत्युक-राज के राजा का नाम शब्द-पालक है। वह बड़ा मूर्ख और घमण्डी है। एक बार वह अपने हजार बेटों के साथ मुझ पर चढ़ आया। तब मैंने बिना युद्ध किए ही उसके खतरे से बचने के लिए एक उपाय किया। मैं एक राक्षस-गुरु का भेष धारण करके उसके पास गया। उसने मुझे देखते ही मेरी आवभगत की । बड़ी देर तक इधर-उधर की बातें करने के बाद मैंने उससे कहा- "हे राक्षस-राज! तुम अपने हजार बेटों को देख कर बहुत ख़ुश हो। लेकिन क्या तुमने कभी सोचा है कि उनके जन्म में क्या रहस्य है?"

"मेरे इजारों बेटे अमावास के दिन पैदा हुए थे! इसके सिवा उनके जन्म में और क्या रहस्य हो सकता है?" मेरी बात सुन कर शब्द-पालक ने मुझसे पूछा। "ओ पगले राजा ! तो तुम अपने पुत्रों के जन्म का रहस्य जानते ही नहीं ? अच्छा मुझे यह तो वताओ कि जन्म के समय तुम्हारे बेटे रोए थे था हँसे थे?" मैंने उससे पूछा। "रोए ही होंगे जैसा कि सभी बच्चे करते हैं। लेकिन मुझे ठीक ठीक मालूम नहीं। ठहरिए,

मैं अभी अपने पुरोहितों से पूछ कर बताता हूँ।" यह कह कर उसने एक नौकर को पुरोहितों से यह बात पूछने के लिए भेजा। मैंने उससे कहा-"राजन्! जब बच्चा रोते हुए पैदा होता हैं और कच्ची हँसते हुए पैदा होती हैं तब राज पर भारी सङ्कट आते हैं। उस देश का राजा लड़ाइयों में हार खाता है। हर काम उसकी मरजी के खिलाफ होता है। इस जन्म की बात तो यह रही। दूसरे जन्मों में भी उसकी सन्तान नष्ट हो जाती हैं। ऐसा हमारे राक्षस-गुरू परम-पूज्य शुक्राचार्य का कहना है।"

मैं यह कह ही रहा था कि नौकर ने पुरोहितों के पास से लौट कर कहा-"हुजूर ! पुरोहितों का कहना है कि हमारे राज-पुत्र सभी रोते दी पैदा हुए थे।" यह सुनते ही तुरन्त शब्द-पालक दर-बल सहित अपने राज को लौट गया। वहाँ जाकर उसने अपने हजारों बेटों को मरवा डाला और उनके सिर किले के कँगूर पर लटकवा दिए। उसी समय से उसने यह कानून भी जारी कर दिया कि



उसके राज में जो बच्चे रोते हुए पैदा हों और जो बच्चियाँ हँसती पैदा हो, वे पन्द्रह दिन के अन्दर ही काली के आगे बलि चढ़ा दिए जाएँ। इस तरह मैंने उसके खतरे से बचने का रास्ता हूँ निकाला। सच पूछिए तो आप लोगों की चिन्ता का कारण मैं ही हूँ।" चिष्णु ने अपने शाप का सारा किस्सा कह सुनाया।

तब शिवजी ने कहा-"ठीक है! आपने उसके अत्याचार के लिए उचित दण्ड दिया। लेकिन अब वह सुधर गया हैं। इसलिए अब उसे पुन्सतान देने में कोई हर्ज़ नहीं । आप ही इसके लिए कोई-न कोई उपाय बताइए !"

ब्रह्मा ने भी कहा कि शब्द-पालक को एक पुत्र देने का उनका विचार है। विष्णु को भी राक्षस-राज पर दया आा गई। उन्होंने स्वर्ग से मूकेश नामक देवता को बुला कर उसे शब्द-पालक की सबसे छोटी रानी की कोख से जन्म लेने का आदेश दिया। तब उन्होंने शिव और ब्रह्मा से कहा-"पहले जन्मों के पुण्यों के फल से ही लोग स्वर्ग पाते हैं और अनेक सुख भोगते हैं। इसलिए मूकेश स्वर्ग सुखों की याद करके हँसते हुए पैदा होगा। बचपन में यह गुँगा होगा और किसी से न बोल सकेगा।

इसकिए स्वर्ग के रहस्य किसी को बता न सकेगा। बचपन बीतते बीतते यह अपने पूर्व-जन्म का हाल भूल जाएगा और इस तरह मनुष्यों में मिल जाएगा। इससे हमारा भेद भी नहीं खुलेगा और आप दोनों की इच्छा भी पूरी होगी। क्यों, क्या सम्मति है आप दोनों की ?

"ठीक है! आपने बहुत अच्छा उपाय ढूँढ निकाला !" ब्रह्मा और शिव जी विष्णु का उपाय सुन कर बहुत खुश हुए। चिष्णु के आज्ञानुसर मूकेश राक्षस-राज के घर में एकलौता बेटा बन कर पैदा हुआ। उसने बड़े होने के बाद अपने पिता का चलाया हुआ काला कानून हटा दिया। उसके राज्य मैं सारी प्रजा सुख से रहने लगी।

बड़ों का कहना है कि विष्णु की माया के कारण आज भी मनुष्य को जन्म के बाद बहुत दिन तक बोलने की शक्ति नहीं रहती और जब तक वह बड़ा होकर बोलना सीखता है तब तक पूर्व-जन्म का सारा हाल भूल जाता है।





किसी समय उज्जैन में एक राजा था। उसका नाम था रूपचन्द। वह अन्धा ओर लँगड़ा था। इसलिए न वह कहीं हिल-डुल ही सकता था ओर न कोई चीज़ ही देख सकता था। राजा अपनी दशा पर आप ही बहुत दुखी हुआ। छेकिन वह कर ही क्या सकता था! आखिर उसने यह सोच कर सन्तोष कर लिया कि मैने अपने पूर्व-जन्म में शायद कोई महा-पाप किया होगा जिसका फल आज मुझे भुगतना पड़ रहा है।

कुछ दिन बाद उस नगर में एक खबर फैल गई कि किले के बुर्ज पर एक पीपल का पेड़ है जो हवा चलते ही आदमी की तरह बोलने लगता है। यह खबर जब राजा के कानों तक पहुँची तो उसने मन्त्री को बुला कर कहा कि मुझे पीपल के पेड़ के नीचे पहुँचा दो। राजा की इच्छा के अनुसार वह पीपल के पेड़ के नीचे पहुँचा दिया गया। राजा बड़ी उत्सुकता से पेड़ की बोली सुनते के लिए बैठा रहा। लेकिन दिन भर पेड़ कुछ न बोला। तब राजा ने उस रात को भी वहीं बैठे रहने का निश्चय किया। आधी रात के करीब जब हवा चलने लगी तो पेड़ पर से कोई राजा का नाम लेकर इस तरह बोलने लगा जैसे वह उसका कभी का पुराना दोस्त हो-"राजन् ! मेरा नाम अग्निशर्मा है। मैं एक ब्राभण हूँ। अनेकों पाप करने के कारण मुझे प्रेत-रूप में इस पेड़ का आश्रय लेना पड़ा। जब तक मैं किसी का उपकार न करूँगा और वह हृदय-पूर्वक आशीर्वाद न देगा तब तक मुझे इस शाप से छुटकारा नहीं मिलेगा। इसलिए मैं तुम्हारा उपकार करना चाहता हूँ ! इसके लिए मुझे मनुष्य की देह धर कर दूर देश जाना पड़ैगा। राह-खर्च के लिए मुझे कुछ रुपयों की भी जरूरत होगी। अगर तुम कुछ धन लाकर इस पेड़ के

कुमारी ज्योति



खोखले में रख दो तो मैं यहाँ से जाकर तुम्हारी आँखें चङ्गी करने के लिए दवा ले आऊँगा। बोलो, क्या तुम्हें मेरी बातों पर विश्वास होता है?"

ये बातें सुन कर राजा रूपचन्द ने सोचा-"जो मेरी आँखे अच्छी करके फिर चलने-फिरने की ताकत देगा उसे मैं थोड़ा धन क्या, आधा राज भी दे सकता हूँ।" यह सोच कर उसने बहुत सा धन मँगवाया और उस पेड़ के खोखले में रखवा दिया। उस दिन से उस पेड़ में से फिर कोई आवाज नहीं सनाई दी। इसकी वजह क्या थी ? इसकी वजह यह थी कि घन मिलते ही अग्निशर्मा का प्रेत मनुष्प-रूप घर कर तुरन्त वहाँ से चल दिया था।

इस तरह वहाँ से बहुत दूर जाने पर उसे एक गाँव दिखाई दिया। उस गाँव में एक जगह बहुत से लोग एक औरत की लाश के चारों ओर जमा होकर रो-धो रहे थे। वहीं बगल में एक नोजवान खड़ा था जिसे नहला-धुला कर एक अच्छी पोशाक पहनाई जा रही थी। अग्निशर्मा ने जाकर पूछा-"बात क्या है?" तब किसी ने बताया कि वह नौजवान उस मरी हुईं औरत का पति है। हमारे देश का रिवाज है कि जब स्त्री मर जाती है तो पति भी उसके साथ सती हो जाता है। इसीलिए लोग उसे सजा-धजा कर तैयार कर रहे हैं।"

उनकी बातें सुन कर अग्निशर्मा को बहुत क्रोध आया। उसने कहा-"यह कहाँ का अन्याय है? किस शास्त्र में लिखा है कि स्त्री के साथ पति को भी "सती" हो जाना चाहिए !

अलबत्ता जब मरद मर जाता है तो कहीं कहीं उसकी स्त्री चिता पर जल कर ख़ुद भी जान दे देती है। लेकिन यह भी अच्छी प्रथा नहीं।" इस तरह जब उसने बहुत देर तक उन्हें समझाया तो उन्होंने उस युवक को छोड़

दिया और अग्निशर्मा से प्रार्थना की कि वह उसी गाँव में रह जाए। लेकिन वह न ठहरा।

शर्मा वहाँ से और एक शहर में जा पहुँचा। न जाने क्यों, उस शहर के सभी लोग मुँह लटकाए बड़े उदास बैठे हुए थे। जब शर्मा ने पूछा कि "इसकी वजह क्या हैं? तुम सब इतने उदास क्यों हो ?" तो किसी ने कुछ जवाब नहीं दिया। जब शर्मा ने एक बूढ़े से जाकर पूछा तो उसते कहा-"बेटा ! दस दिन पहले एक अजीव जानवर हमारे शहर के नजदीक के जङ्गल में आकर रहने लगा। वह तब से गरजते हुए रोज हमारे शहर में आता है ओर लोगों को मनमानी उठा ले जाता है। उस जानकर के आठ हाथ और आठ पैर हैं। उसका सिर हाथी के सिर से भी बड़ा है। उसके दो पैने सीङ्ग हैं। लेकिन उसके एक ही आँख है जो माथे के ठीक बीचों-बीच है। यह जानवर जब मुँह खोलता है तो भयङ्कर लपटें चारों ओर छा लेती हैं।" वह यों कह ही रहा था कि इतने में कहीं से एक भयङ्कर शब्द सुनाई दिया। तुरन्त लोग सब जहाँ के तहाँ मागने लगे। यह देख कर दार्मा ने उनसे कहा-"भाइयों ! ठहरो | भागो



मत ! तुम लोग कहीं से एक बड़ा सा आइना ले आओ। मैं इस जानवर को मारने का उपाय करता हूँ।" यह सुन कर कुछ लोग जो कुछ साहसी थे तुरन्त कहीं से एक बड़ा आइना ले आए। शर्मा ने उस आइने को जानवर के आने की राह में एक बड़ी चट्टान पर खड़ा कर दिया। थोड़ी देर में वह अजीब जानवर चिंघाड़ते हुए वहाँ आया। उसके कदमों के नीचे धरती भी काँपने लगी। आते ही वह लोगों पर टूटना ही चाहता था कि इतने में उसे आईने में अपनी ही सूरत दिखाई दी। उसने समझा कि उसके जैसा ही ओर एक जानवर वहाँ आकर बैठा हुआ है। वह गुस्से से दौड़ते



हुए आया और उस आइने से भिड़ गया। आइना एक ही चोट में चकनाचूर हो गया। तब उसने समझा कि उसका दुश्मन चट्टान में छिप गया है। वह दौड़ता हुआ उस चट्टान को टक्कर मारने लगा। थोड़ी ही देर में वह लहू-लुहान हो गया और वहीं गिर कर तड़प तड़प कर मर गया। इस तरह शर्मा की चतुरता से उस शहर की एक भारी बला टल गई। शहर वालों ने भी शर्मा से वहीं रह जाने की प्रार्थना की। लेकिन शर्मा ने उन्हें समझाया कि वह राजा के काम से जा रहा है। इसलिए बीच में कहीं नहीं रुक सकता। इस पर उन्होंने कहा-"अच्छा, तो आप याद रखिए-- शहर के बाहर आपको दो राहें मिलेंगी। आप दक्खिन का रास्ता न लीजिए। क्योंकि उस राह में एक घना जङ्गल पड़ेगा जिसमें अनेकों बाघ, शेर आदि खूँखार जानवर और जहरीले साँप-बिच्छू भरे हैं। उस जङ्गल में गन्धर्व लोग रहते हैं जो आदमी को उधर से जिन्दा नहीं जाने देते।"

शर्मा ने उनसे बिदा ली और शहर से बाहर हो गया। थोड़ी दूर जाने पर उसे दो राहें दिखाई दीं। उसने जान-बूझ कर दक्खिन जाने वाला रास्ता पकड़ा। उस राह से थोड़ी दूर जाने पर उसे जङ्गल दिखाई दिया। जङ्गल बहुत घना था। शर्मा को कँटीली झाड़ियों में से उलझते जाना पड़ा। शीघ्र ही उसे खूँखार जानवरों की गुर्राहट सुनाई दी। जमीन पर साँपों और बिच्छुओं के मारे कदम धरने तक की जगह न थी। लेकिन शर्मा बिलकुल नहीं डरा। वह आगे बढ़ता ही गया। इस तरह बड़ी कठिनाई से उस जङ्गल को पार करने पर उसे एक एक सुन्दर बगीचा दिखाई दिया। नजदीक जाते ही उसे फूलों के गन्ध ने चारों ओर से घेर लिया। वहाँ की हवा उसके थके हुए बदन में फुरती भरने लगी। वह भूख-प्यास, राह की थकान, सब कुछ भूल कर बगीचे में

जाकर आराम से बैठ गया। इतने में अन्धेरा हो गया। उस बगीचे के पेड़-पौधे तुरन्त एक तरह की विचित्र ज्योति से जगमगाने लगे। तब शर्मा ने जान लिया कि वे मामूली पेड़-पौधे नहीं हैं। इतने में उसके पीछे से किसी ने पुकार कहा -"कौन हो तुम ? यहाँ क्यों आए हो ?"



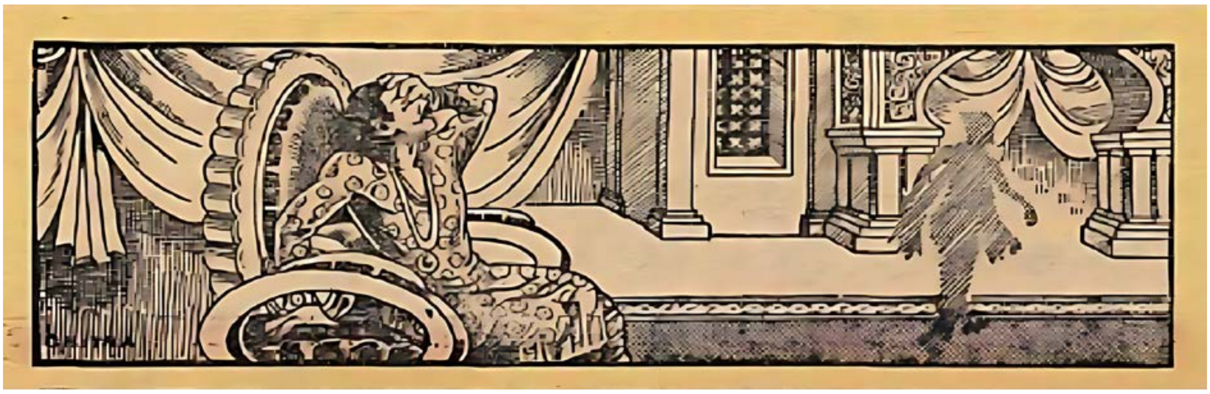
शर्मा ने पीछे फिर कर देखा तो उसे गन्धर्वों का एक झुण्ड दिखाई दिया। उसने निडर होकर उनसे सारी कहानी कह सुनाई।

तब उन गन्धर्वों ने गरज कर कहा- "क्या तुम नहीं जानते कि यह प्राण-वन है और इसमें आदमियों को प्रवेश करना मना है ? लो, अब भोगो अपनी करनी की सजा !" यह कह कर उन्होंने शर्मा को पकड़ना चाहा। इतने में और एक गन्धर्व ने आकर पूछा- "क्या गोलमाल हो रहा है ?" तुरन्त गन्धर्व लोग अग्निशर्मा को छोड़ कर दूर हट गए। उस नए आए हुए गन्धर्व ने शर्मा को देखा तो प्रेम से गले लगा कर कहा- "अरे तुम ! तुम यहाँ कैसे आ पहुँचे ?" यह देख कर दूसरे गन्धर्व हक्के-बक्के रह गए। तब उस गन्धर्व ने उनसे कहा- "एक बार मैं शाप- वश एक साँप के रूप में पृथ्वी पर पैदा हुआ। उस समय मेरे एक दुश्मन ने अकेला देख कर मुझ पर हमला किया। तब इसी शर्मा ने मेरी जान बचाई। इसी के उपकार से मेरा शाप से छुटकारा हुआ।" यह सुन कर सभी गन्धर्वों ने शर्मा से माफी माँगी। क्योंकि वह गन्धर्व उनका युवराज था। शर्मा ने अपनी कहानी सुना कर यात्रा का कारण बताया। तब युवराज ने कहा- "शर्मा ! तुम पत्तों का एक दोना बनाओ ! उसमें इस बगीचे के फूल-पौधों पर बरसने वाली ओस की बूँदें जमा करो। उन बूँदों को छिड़कते ही भयङ्कर से भयङ्कर बीमारियाँ दूर हो जाती हैं। उनके प्रभाव से अन्धे भी आँखें पा जाते

हैं। लँगड़े चलने लगते हैं। लेकिन एक बात याद रखो ! जो कृतघ्न हैं और जो अपनी बात तोड़ते हैं उन पर यह काम नहीं करता।" यह सुन कर शर्मा ने बड़ी खुशी के साथ पत्तों का एक दोना बनाया और उसमें उस बगीचे के फूल-पौधों पर पड़ी हुई ओस की बूँदें जमा कीं। तब दो गन्धर्बों ने उसे अपने कन्धे पर पर चढ़ा कर सबेरा होने के पहले ही उज्जैन पहुँचा दिया। शर्मा ने तुरन्त राजा के पास जाकर वे ओस की बूँदें उसकी आँखों और टाँगों पर छिड़क दीं। बूँदें पड़ते ही राजा की आँखें अच्छी हो गई और वह चलने फिरने भी लगा। उसे बहुत खुशी हुई। तब शर्मा ने कहा-"राजन् ! अब आप मेरा ईनाम दे दीजिए न ?"

"कैसा ईनाम ? मैं कुछ नहीं जानता !" राजा ने कहा जैसे वह कुछ जानता ही न हो । तब शर्मा ने कहा - "राजन् ! क्या आप ने अपने मन में नहीं कहा था कि जो मेरी आँखें अच्छी करके मुझे चलने-फिरने की ताकत देगा, उसे मैं थोड़ा धन क्या, आधा राज भी दे दूँगा ?"

लेकिन राजा साफ मुकर गया। तब शर्मा ने कहा -"राजा ! तुमने सोचा कि कोई तुम्हारे मन की बात नहीं जान सकता। लेकिन खुनो ! मैं बड़ी दूर जाकर तुम्हारे लिए प्राण-वन की ओस की बूँदें ले आया। लेकिन तुम अभागे हो। इसलिए अपना वादा इतनी आसानी से तोड़ गए। मुझे तुम्हारे राज की कोई दरकार नहीं। मेरा शाप छूट गया। लो, मैं जाता हूँ।" यह कह कर शर्मा शाप से छूट कर वहाँ से चला गया। लेकिन राजा अपना वादा तोड़ कर कृतघ्न बन गया था । इसलिए वह फिर पहले की तरह अन्धा और लँगड़ा बन गया। सच है, कृतघ्न की व्याधि पर कोई दवा काम नहीं करती।

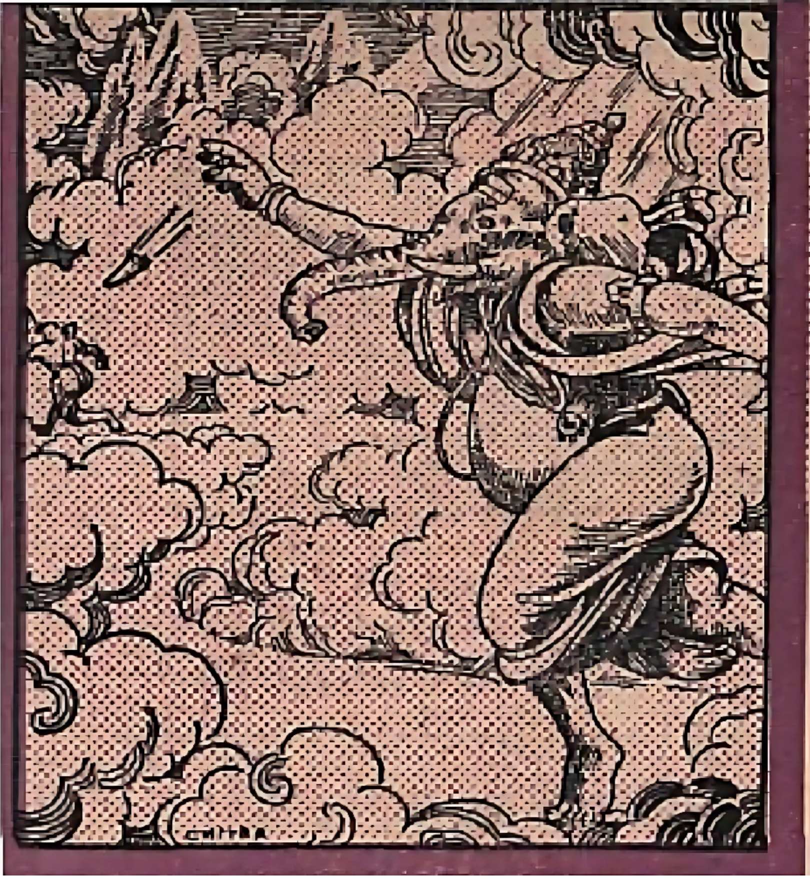




पुराने जमाने में गजमुख नामक एक राक्षस रहता था। उसका मुँह हाथी के मुँह जैसा था। इसलिए उसका वह नाम पड़ा। गजमुख ने शिवजी की घोर तपस्या की और उनसे अमर होने का वरदान पाया। वर पाने के बाद गजमुख के गर्व का ठिकाना न रहा। अब वह दुनिया में किसी से नहीं डरता था। एक दिन रक्षसों की एक बड़ी सेना लेकर वह देवराज इन्द्र पर चढ़ आया । देवताओं ने बड़ी वीरता के साथ उसका सामना किया। लेकिन

अन्त में उन्हें हार कर भाग जाना पड़ा। उस हार के बाद राक्षस लोग देवताओं को और भी सताने लगे। आखिर उनके अत्याचारों से तङ्ग आकर इन्द्र ने एक दिन गजमुख के पास जाकर विनती की -"हे राक्षस-राज ! हम दोनों भाई-भाई हैं। इसलिए आपस में लड़ना ठीक नहीं। अगर तुम्हें स्वर्ग का राज्य चाहिए तो आओ ! मेरे सिंहासन पर बैठ कर तुम्हीं राज करो। मैं जङ्गल जाकर तपस्या करूँगा।" इन्द्र ने इस तरह कहा जैसे संसार के झञ्झटों से उसका जी उब गया हो।

लेकिन गजमुख कम होशियार न था। उसने कहा -"नहीं, तुम्हें कहीं जाने की जरूरत नहीं ! तुम स्वर्ग में ही रह कर राज करो। पर मेरे किसी काम में बाधा न डालो ! इससे ज्यादा मैं और कुछ नहीं चाहता।" इन्द्र ने उसकी बात मान ली। पहले देवता लोग भी गजमुख की उदारता पर खुश हुए। वे उसके कुचक्र का भेद नहीं समझ पाए । लेकिन जब उस दिन से गजमुख रोज एक एक देवता को अपने दरबार में बुलाने और कान पकड़वा कर उठाने बैठाने लगा तो यह अपमान वे सह न सके। उन सबने एक दिन शिवजी के पास पहुँच कर शिकायत की। तब शिवजी



ने अपने बड़े लड़के गणेश को बुला कर कहा -"बेटा ! तुम किसी न किसी उपाय से गजमुख को अपने काबू में करो और उसे ऐसा सबक दो कि वह फिर कभी देवताओं पर कुछ जुल्म न कर सके।" बच्चो ! अब तुम शायद गणेश जी को याद करके मन ही मन हँसोगे कि उतनी बड़ी तोन्द लेकर वे गजमुख से क्या लड़ेंगे और उसे किस तरह हराएँगे ! लेकिन तुम्हारा सोचना गलत है। गणेशजी बड़े वीर पुरुष हैं। जरूरत पड़ने पर वे लड़ने में किसी से पीछे नहीं रहते।

पिता की आज्ञा पाते ही गणेशजी ने गजमुख के पास जाकर कहा -"भई ! तुम स्वर्ग छोड़ कर तुरन्त चले जाओ।" लेकिन गणेशजी को देख कर गजमुख हँसने लगा। तब गणेश जी को सचमुच क्रोध आ गया और उन्होंने सोचा-"इसे जरूर दण्ड देना चाहिए।" तुरन्त दोनों में लड़ाई छिड़ गई। गणेशजी ने उस राक्षस पर तरह तरह के अस्त्र चलाए। देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा ने उन्हें नए नए हथियार बना कर दिए थे। उन्होंने उन सबका प्रयोग किया। लेकिन गजमुख पर उनका कोई असर न हुआ। तब गणेश जी ने उग्र रूप धारण करके अपने दो दाँतों में से एक दाँत उखड़ लिया और मन्त्र पढ़ कर उससे गजमुख पर निशाना मारा।

मन्त्र के बल से उनका वह दाँत सीधे गजमुख पर जा लगा और बार बार उसके शरीर को छेदने लगा। आखिर गजमुख उसे न बर्दाश्त कर सका और लहू-लुहान होकर वहाँ से भाग खड़ा हुआ। लेकिन दाँत ने उसका पीछा न छोड़ा। तब अपनी जान बचाने के लिए गजमुख एक चूहा बन गया और पास के एक बिल में घुस गया। लेकिन



गणेश के दाँत ने उस बिल को भी खोद डाला और गजमुख को अधमरा सा करके गणेश के सामने डाल दिया। डर से थर थर काँपते हुए उस चूहे को देख कर गणेश जी को दया आ गई और उन्होंने उसे जोर से फटकार कर कहा-"रे गजमुख ! क्या अब तेरी समझ में आ गया कि देवताओं को सताने वाले का क्या हाल होता है ? इसलिए अपना भला चाहते हो तो चुपचाप भाग जाओ और फिर किसी को न सताओ !"

तब गजमुख ने कहा-"गणेश जी ! कहिए तो मैं आपका गुलाम बन जाऊँ और आप का जो हुक्म बजा लाऊँ ! लेकिन आप मुझे अपने पुराने दुश्मनों देवताओं से बदला चुकाने से न रोकिए ! क्या आप जानते हैं कि उन्होंने मुझे शिवजी से वर पाने के पहले कितना सताया है?" वह बिलकुल गिड़गिड़ाने लगा।

तब गणेश जी ने मन में सोचा - "गजमुख अत्याचारी तो है। लेकिन उसका कहना भी सत्य है !"

उन्होंने देखा कि वह धोखेबाज भी नहीं मालूम होता। इसलिए उन्होंने कहा-"हे गजमुख ! मैं तुम्हारे मन का दर्द समझ गया। देखो! मैं तुम्हारे इच्छानुसार ऐसा इन्तजाम करूँगा जिससे रोज देवता लोग तुम्हारे आगे कान पकड़ कर उठा-बैठा करेंगे। लेकिन इसके बदले तुम्हें मेरी एक सेवा करनी होगी। इससे तुम्हारा बदला भी चुक जाएगा और मेरा काम भी निकल आएगा। बोलो, तुम्हें यह मञ्जूर है ?"

"आपकी बात सिर आँखों पर !" गजमुख ने सिर नवा कर विनय के साथ कहा।

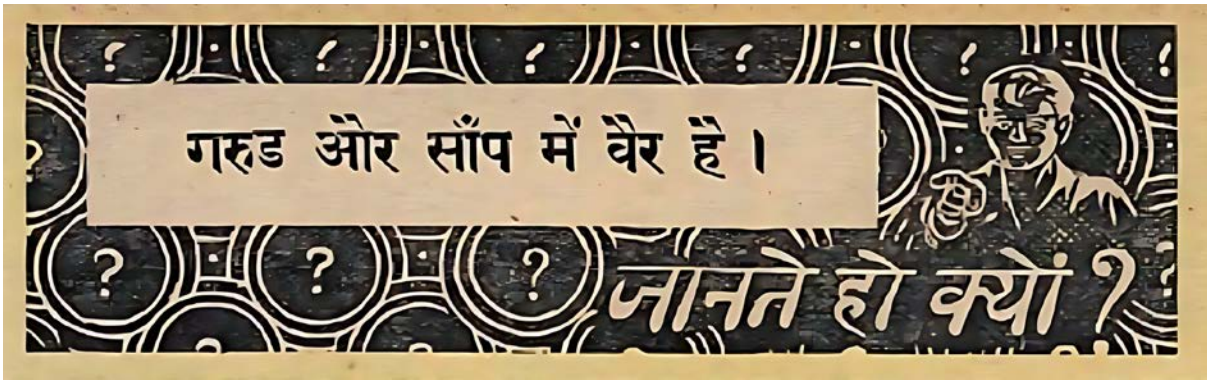
"अच्छा! तो तुम्हें आज से इस चूहे के रूप में ही रह कर मेरा वाहन बनना पड़ेगा।" गणेश जी ने कहा।

"इससे बढ़ कर मुझे और क्या चाहिए ? मैं बड़ी खुशी से यह काम किया करूँगा।" गजमुख ने कहा।

जब देवताओं को मालूम हुआ कि अत्याचारी गजमुख को हरा कर गणेश लौटे आ रहे हैं तो वे सब उनका स्वागत करने के लिए कैलास के द्वार पर जमा हो गए। वे सब गणेश जी की प्रशंसा में स्त्रोत्र पढ़ कर उन्हें खुश करना चाहते थे। लेकिन नन्दीश्वर ने उनसे कहा - "गणेश जी सिर्फ़ स्त्रोत्र सुन कर खुश नहीं होते। अगर आप सब सचमुच उन्हें खुश करना चाहते हैं तो उनके दर्शन होते ही भक्ति के साथ कान पकड़ कर तीन बार उठिए-बैठिए। इसके सिवा गणेश जी को खुश करने का और कोई उपाय नहीं। यह सुन कर देवता सब अचरज में पड़ गए ! उन्हें अब भी कान पकड़ कर उठने-बैठने से छुटकारा नहीं मिला। लेकिन कुछ बुद्धिमानों ने कहा -"अजी ! एक राक्षस के सामने डर से थर-थर काँपते हुए उठने-बैठने में और देवता के आगे भक्ति के कारण कान पकड़ कर उठने-बैठने में बहुत अन्तर है।"

तब देवता लोगों ने गणेश जी के दर्शन करके उन पर आनन्द के साथ फूल बरसाए । तब से वे गणेश को देखते ही कान पकड़ कर उठने-बैठने लगे । यही प्रथा धीरे धीरे पृथ्वी पर भी चल पड़ी। उसी समय से गणेश जी का नाम "मूषिक-वाहन" (याने चूहे पर चढ़ कर घूमने वाले) पड़ गया।





किसी समय "कुमार" नाम का एक शिकारी रहता था। वह भगवान विष्णु का बड़ा भक्त था। एक बार वह शिकार खेलने गया और एक माह तक घर नहीं लौटा। ऐसा अच्छा मौका देख कर पाताल का राजा नागराज उसके घर गया और उसकी सुन्दरी स्त्री को रथ पर चढ़ा कर अपने महल में ले गया। वहाँ उसने उसे अपने मन्त्र-बल से साँप बना दिया। थोड़ी देर में कुमार का लड़का जो उस समय बाहर खेलने गया था घर लौटा तो उसने देखा कि घर सूना पड़ा है। उसकी माँ का कहीं पता न था। वह रोता-धोता उसे ढूँढ़ता हुआ एक जङ्गल की ओर गया। बहुत दूर जाने पर वह थक कर एक बरगद के पेड़ के नीचे बैठ गया तो उसे साँप की एक बड़ी बाँबी दिखाई दी। वह तुरन्त उस बाँबी में घुस गया। इस तरह जाते जाते वह लड़का पाताल-लोक पहुँच गया। वहाँ जहाँ देखो, साँप ही साँप दिखाई देते थे। आदमी की सूरत भी न दिखाई देती थी। वह लड़का डर कर एक जगह खड़ा हो गया। तब कुछ साँपों ने उसके पास आकर मनुष्य की बोली में पूछा- "कौन हो और कहाँ से आए हो ?"

लड़के ने अचरज से भर कर अपनी कहानी सुनाई और माँ का पता बताने की प्रार्थना की। तब कुछ नागों ने उस पर तरस खाकर कहा - "बेटा! हमारा राजा आज सबेरे एक औरत को पकड़ लाया है। शायद वही तुम्हारी माँ हो ! चाहो तो हम तुम्हें किले की राह दिखा दें। लेकिन हो सकता है कि तुम्हारी माँ साँप के रूप में हो और तुम उसे पहचान न सको ?" तब लड़के ने कहा -"मुझे किले की राह दिखा दो।

मैं किसी न किसी तरह नाग-राज को मना कर अपनी माँ से मिलूँगा।" तब उन नागों ने उस लड़के को किले की राह दिखा दी। लड़के ने अभी किले में कदम भी नहीं रखें थे कि उसकी माँ साँप के रूप में दौड़ी हुई आई। यह देख कर नाग-राज ने लड़के को भी साँप के रूप में बदल डाला। माँ-बेटे दोनों साँप बन कर उसी किले में रहने लगे। उधर कुमार ने जब घर लौट कर देखा तो स्त्री और पुत्र दोनों का कहीं पता न था। जब वह उन्हें ढूँढने निकला तो उसे रथ के पहिए की निशानी दिखाई दी। उसी राह से चलते चलते उसे जङ्गल के पास बरगद का पेड़ और उसके नीचे साँप की बाँबी दिखाई दी। वह भी उस बाँबी में घुस गया और पाताल जा पहुँचा। उसे देखते ही नाग राज ने उसे लड़ाई के लिए ललकारा। तुरन्त दोनों भिड़ गए। दोनों में लड़ाई हो ही रही थी कि कुमार के पत्नी-पुत्र साँप के रूप में आकर उसके पैरों से लिपट गए।

तब कुमार ने उन्हें पहचान लिया और भगवान विष्णु की प्रार्थना करके उन दोनों को गरुडों के रूप में बदल दिया। यह देख कर नाग-राज अचरज से मुँह बाए खड़ा देखता रह गया। इतने में कुमार ने भी एक गरुड़ का रूप धारण कर उस पर अपने पैने नखों और चोञ्च के जरिए हमला किया। इस तरह सारा खेल बिगड़ते देख कर नाग राज और उसके सभी साथी पल भर में ग़ायब हो गए। कुमार ने कुछ दिन वहीं रह कर उनकी राह देखी। लेकिन वे जब लौट कर नहीं आए तो उसने शपथ ली कि वह साँपों का सत्यानाश किए बिना चैन नहीं लेगा। तब से वह गरुड के ही रूप में रह कर अपने परिवार सहित साँपों का शिकार खेलने लगा। इसी से गरुड जहाँ कहीं साँप को देखता है, तुरन्त उस पर टूट पड़ता है।



CHANDAMAMA (Hindi) JAN. 1951 Regd. No. M. 5452



खरगोश - परिवार